जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर.

(हिंदी विभाग - पुष्प. ३६)

आचार्यश्री शिवार्य विरचित

भगवती आराधना

(आचार्यश्री अपराजित सूरि रचित विजयोदया टीका
तथा तदनुसारी हिन्दी टीका सहित)

- सम्पादक : एवं अनुवादक : -

सिद्धान्ताचार्य स्व. पं. कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

- प्रकाशकः -

जैन संस्कृति संरक्षक संघ,

(जीवराज जैन ग्रंथमाला)

सतोष भवन - प्लॉट न. ५६/१०, बुधवार पेठ, जुना पुणे नाका, सोलापुर - २

फोन - ०२१७-२३२०००७, मोबा - ९८९०९६७७०६

प्रकाशक व मुद्रक :-

श्री अरविंद रावजी दोशी

अध्यक्ष - जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर

चतुर्थ आवृत्ति -२००७- प्रतियाँ - १०००

वीर संवत् २५३३.

अक्षर विन्यास :-

संतोषकुमार शहा

जीवराज ग्राफिक्स,

४१०, दक्षिण कसबा, सोलापुर.

मुद्रण स्थल :-

स्टेप इन सर्व्हिसेस

१३११, कसबा पेठ, पुणे - ११

मूल्य :- रुपये ४०० /-

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

प्रतिलेखनसाध्यप्रयोजनाख्यानायोत्तरगाथाद्वयम्—

इरियादाणणिखेवे विवेगठाणे णिसीयणे सयणे ।
उव्वत्तणपरिवत्तण पसारणाउंटणामरसे ॥९५॥

'यस्य येन हि संबन्धो दूरस्थमपि तस्य तत्' इत्यनेन क्रमेण संबन्धः—**'इरियादाणे' पडिलेहणेण पडिलिहिज्जदित्ति** एवं सर्वत्र । ईर्यायां गमने व्रजतः स्वपादनिक्षेपदेशे दुष्परिहाराः यदि स्युः पिपीलिकादयोऽथवा प्राक् पादावलग्नरजसो विरुद्धयोनिर्वाभूमिरुत्तरा जलं प्रवेष्टव्यं यदि **'पडिलेहणेण'** प्रतिलेखनेन **'पडिलेहिज्जदि'** निराक्रियते त्रसादिकं । **'आदाने'** ग्रहणे ज्ञानचारित्रसाधनानां । **'णिखेवे विवेके'** । ज्ञानसंयमोपकरणानां निक्षेपे स्थापनायां । यन्निक्षिप्यते यत्र च तदुभयप्रमार्जनं कार्यं । शरीरमलानां उच्चारादीनां **'विवेके'** उत्सर्जने वा कर्तरि प्रदेशः । सा च भूर्यद्ययोग्या प्रमार्जनीया । **'ठाणे निसीयणे सयणे'** स्थाने आसने च शयनक्रियायां । **'उव्वत्तणपरियत्तणपसारणाउंटणामरसे'** । **'उव्वत्तणं'** उत्तानशयनं । **'परिवत्तणं'** पार्श्वान्तरसंचारं, **'पसारणं'** प्रसारणं हस्तपादादीनां । आउंटणं संकोचनं । स्पर्शनक्रिया 'आमरसशब्देनोच्यते' ॥

पडिलेहणेण पडिलेहिज्जइ चिण्हं च होइ सगपक्खे ।
विस्सासियं च लिंगं संजदपडिरूवदा चेव ॥९६॥

'चिण्हं च होदि' चिह्नतां भजते । **'सगपक्खे'** स्वप्रतिज्ञायां । सर्वजीवदया हि यतेः पक्षः । **विस्सासियं च'** विश्वासकारि च जनानां । **'लिंगं'** प्रतिलेखनाख्यं कथमयमतिसूक्ष्मान्कुंथ्वादीनपि परिहर्त्तुं गृहीतप्रति-

---

अब प्रतिलेखनका प्रयोजन बतलानेके लिये दो गाथा कहते हैं—

गा०—गमनमें, ग्रहणमें, रखनेमें मल त्यागमें स्थानमें बैठनेमें शयनमें ऊपरको मुखा करके सोनेमें करवट लेनेमें हाथ पैर फैलानेमें संकोचनमें और स्पर्शनमें पीछीसे परिमार्जन करना चाहिये ॥९५॥

टी०—जिसका जिसके साथ सम्बन्ध होता है दूर होते हुए भी वह उसका होता है, इस क्रमके अनुसार प्रतिलेखनके दूर होते हुए भी यहाँ उसके साथ सम्बन्ध लगाना चाहिये। ईर्या अर्थात् गमन करते हुए यदि अपने पैर रखनेके देशमें चींटी आदिको दूर करना अशक्य हो, अथवा अपने पैरोंमें लगी हुई धूलसे आगेकी भूमि विरुद्ध योनि वाली हो या यदि जलमें प्रवेश करना हो तो पीछीसे त्रसादि जीवोंको दूर करना चाहिये। अर्थात् पीछीसे उस देशका पैर आदि का परिमार्जन करके चलना चाहिये। ज्ञान और चारित्रके साधन पुस्तक कमण्डलु आदिको ग्रहण करते समय, या उन्हें रखते समय, जो वस्तु रखें और जहाँ रखे उन दोनोंका प्रमार्जन करना चाहिये—पीछीके द्वारा उन्हें झाड़ना चाहिये। शरीरके मल मूत्रादिका त्याग करते समय यदि भूमि अयोग्य हो तो उसका प्रमार्जन करना चाहिये। स्थान, आसन और सोते समय मुख ऊपर करके सोते हुए या करवट लेते समय या हाथ पैर फैलाते और संकोचते समय, किसी वस्तु को छूते समय पीछेसे प्रमार्जन करना चाहिये। यहाँ आमरस शब्दसे स्पर्शन क्रियाको कहा है ॥९५॥

गा०—उक्त क्रिया करते समय पीछेके द्वारा प्रतिलेखना करना चाहिये, इस प्रकार पूर्व

लेंखनोऽस्यान्महतो जीवान्कथमिव बाधितुं उत्सहते इति। **'संजदपडिरूवदा चेव'**। संयतानां [1]प्राक्तनानां प्रतिबिंबता च प्रतिलेखना ग्रहणेन भवति ॥९६॥

प्रतिलेखनलक्षणाख्यानायाह—

रयसेयाणमगहणं मद्दव सुकुमालदा लघुत्तं च।
जत्थेदे पंच गुणा तं पडिलिहणं पसंसंति ॥९७॥

'रजसेदाणमगहणं' रजसः सचित्तस्य अचित्तस्य वा स्वेदस्य अग्राहकं। अचित्तरजोग्राहिणा सचित्तरजो प्रतिलेखने तद्विराधना सचित्तरजोग्राहिणा चेतरस्य। स्वेदग्राहिणि रजसामुपहतिः। **'मद्दवसुकुमालदा'** मृदुस्पर्शता मार्दवं, सुकुमालदा सौकुमार्यं। **'लघुत्तं च'** लघुत्वं च। एते पंच गुणाः यत्रैते पंच प्रकारगुणाः संति **'तं'** तत् **'पडिलिहणं'** प्रतिलेखनं **'पसंसंति'** स्तुवंति दयाविधिज्ञाः। अमृदुना, असुकुमारेण, गुरुणा च प्रतिलेखनेन जीवानामुपघात एव कृतो न दयेति भावः। एवं चतुर्गुणयुक्तं लिंगं व्याख्यातं गृहीतलिंगस्य यतेः ॥९७॥

शिक्षानंतरेति तन्निरूपणार्थं उत्तरप्रबंधः—

णिउणं विउलं सुद्धं णिकाचिदमणुत्तरं च सव्वहिदं।
जिणवयणं कलुसहरं अहो य रत्तो य पढिदव्वं ॥९८॥

गाथासे सम्बन्ध है। अपनी प्रतिज्ञामें पीछी चिह्न होती है। और प्रतिलेखना रूप लिंग मनुष्योंको विश्वास करानेवाला है। और प्राचीन मुनियोंका प्रतिबिम्ब रूप है ॥९६॥

टी०—मुनिका पक्ष या प्रतिज्ञा सब जीवोंपर दया करना है। अतः पीछी उसका चिह्न है। तथा यह चिह्न मनुष्योंमें विश्वास उत्पन्न कराता है कि जब यह व्यक्ति अतिसूक्ष्म कीट आदि जीवोंकी भी रक्षाके लिये पीछी लिये हुए है तो हमारे जैसे बड़े जीवोंको कैसे बाधा पहुँचा सकता है। तथा पीछी धारण करनेसे प्राचीन मुनियोंका जो रूप था उसीकी छाया वर्तमान मुनियोंमें आ जाती है ॥९६॥

प्रतिलेखनाके लक्षण कहते हैं—

गा०—धूलि और पसीनेको पकड़ती न हो, कोमल स्पर्शवाली हो, सुकुमार हो, और हल्की हो। जिसमें ये पाँच गुण होते हैं उस प्रतिलेखनाकी प्रशंसा करते हैं ॥९७॥

टी०—सचित्त या अचित्त रज और पसीनेको ग्रहण न करती हो; क्योंकि अचित्त रजको ग्रहण करनेवाली पीछीसे सचित्त रजकी प्रति लेखना करनेपर उनमें रहनेवाले जीवोंका घात होता है और सचित्त रजको ग्रहण करनेवाली पीछीसे अचित्त रजकी प्रतिलेखना करने पर भी घात होता है। पसीनेको पकड़नेवाली पीछीसे रजमें रहनेवाले जीवोंका घात होता है। तथा पीछी कोमल स्पर्शवाली, सुकुमार और हल्की होनी चाहिये। जिस प्रतिलेखनमें ये पाँच गुण होते हैं, दयाकी विधिको जाननेवाले उसकी प्रशंसा करते हैं। इसका भाव यह है कि कठोर, असुकुमार और भारी प्रतिलेखनासे जीवोंका घात ही होता है, दया नहीं। इस प्रकार लिंगको स्वीकार करनेवाले साधुके चार गुणोंसे युक्त लिंगका कथन किया ॥९७॥

---

१. प्रधानानां -आ० मु०।